श्री जयरत्नकृत

सच्चायिका बत्तीसी

म. विनयसागर

संग्रह के स्फुट पत्रों में अट्ठारहवीं शताब्दी लिखित एक पत्र प्राप्त है, जिसमें सच्चीयाय माता की स्तुति की गई है। ३३ पद्य होने से इसे बत्तीसी भी कहा जा सकता है। इसकी रचना संवत् १७६४ जेठ महीने (आषाढ़) में की गई है। उपकेशगच्छीय श्री देवगुप्तसूरि की आज्ञा से जयरत्नमुनि ने देवी की स्तुति की है। यह पूर्ण स्तुति राजस्थानी भाषा में है और कई देशी शब्द भी इसमें प्रयोग किए गए हैं।

जयरत्नमुनि कुछ पुरातनप्रिय दृष्टिगत होते हैं। पुरातत्त्व की रक्षा करने की उनकी दृष्टि है। इसीलिए इस कृति के प्रारम्भ में अपभ्रंश भाषा के रूप में अरजइ, चरचइ, परसइ, घरइ, जनमइ इत्यादि में रूप दिए हैं। किन्तु उसके पश्चात् प्रचलित रूपों को ही देने का प्रयत्न किया है। पद्य ७ से ३३ तक प्रचलित रूप ही दिए हैं।

कवि स्वयं ओइसगच्छ के है। अर्थात् अपभ्रंश भाषा की दृष्टि से उपकेशगच्छ के उवएसगच्छ = ओइसगच्छ = ओवेशगच्छ के रूपान्तर भी दिए हैं। कहा जाता है कि– श्री रत्नप्रभसूरि ने उपकेशपुर में उत्पलदेव को प्रतिबोध देकर ओसवंश की स्थापना की थी। तभी से यह गच्छ प्रसिद्धि में आ रहा है।

श्री रत्नप्रभसूरिने सत्यिका माता को प्रतिबोध देकर स्थापना भी की थी। वह पूर्ण अहिंसक थी, रत्नप्रभसूरिजी की भक्त थी और तभी से उपकेशवंश की परम्परा चली आ रही है। आज सच्चियाई माता का मन्दिर है वह जैनेतरों के कब्जे में है। किन्तु ओसवंश के स्थापक होने के कारण ओसवालज्ञाति के जितने भी गोत्र हैं, वे प्राय: इसी सच्चायिका माता को मानते हैं, ढोक देते हैं, मान्यता मानते हैं और पूजा भी करते हैं। कृति सुन्दर एवं पठनीय है।

(राग वेलावल प्रभाती)

मन सुध ज्यां महिर करै माता, दिन चढ़ती दौलति त्यां दाता ।
विघन हरै त्यां वरदाता, सेवकजन पूरवै सुखसाता ॥१॥
अंगि केसरि कस्तूरी अरचइ, चोवा चन्दन चावण्ड चरचइ ।
देवी धूप खेवी घृत दीप रचइ, पांमइ जिण घरी ऋद्धिसिद्धि परचइ ॥२॥
पूजइ फलफूलां प्रात समइ नवनेवज ढोए कंध नमइ ।
मांगइ सुत अरज करइ मनमइ जित घरइ सुख लीनी सुत जनमइ ॥३॥
माहरै चिन्तामणि तूं माता वलि कामधेनु विसुविख्याता ।
तूं सुरनर त्रिभुवन त्राता दिन-दिन मनवांछित फल दाता ॥४॥
गुण उज्जवल व्रण सांवल गाता साची तूं सिचियाय तूं सुखदाता ।
तूं मात तात सज्जन भ्राता अधिका महियलि तो अवदाता ॥५॥
कर चरण अठील जड्या काठा, माता परताप झड्या माठा ।
सामी दण्ड छंडि लख साठा, इम सोम दुयण कीयउ पराठा ॥६॥
जण विषमी रीति मारग जावै, आडा नडउ उज्जड़ रन आवै ।
तेथि तिस्या नर तो ध्यावै, परघल जल शीतल त्यां पावै ॥७॥
वाट घाट वेला विषमी समर्यां माई आवे तुरत समी ।
गाढा अरि चोरट दुरि गमी अपणाइत दाखइ नजरि अमी ॥८॥
माता अन्न भण्डार भरै मोटो, तूं तिठां धन नावै तोटो ।
खल ग्रह निजबल न करै खोटो, आई जो नर पकड़इच तो ओटो ॥९॥
ताहरा गुण गाइ कहूं इतरो, जगी दे धनराय उपल जितरो ।
धणीयाणी मोपरी महिर धरो, खासो हूं पाना जाद करो ॥१०॥
देवी-सेवि मो दरसण दीजै कुबुद्धि केवी कांनै कीजै ।
माहरी चित चिन्ता मेटीजै, माता मुझ वीनती मानीजै ॥११॥
पांमीजै माय पाय तो परसै, दूझै घरी गायां सैंस दसे ।
अपणी माय पुरसै मन उल्लसै, दही दूध जीमीजै रवि दरसे ॥१२॥
कोई रोग व्याधि प्रभवै न कदा, गुडगुम्बड पीड न होइ मुदा ।
दुःखदालिद दूर हरै दिलदा, सुख उपजै देवी नाम सदा ॥१३॥
धणीय पमइ सांचौ धींग धणी, कवि अन्य गरज सरै न कीणी ।

घणी भौम परसिद्धि घणि, ओ इसराइ साचल मात तणी ॥१४॥
काइं डाइण साइण छल न करइ, देवी नाम लीयां यमदूत डरै ।
भूत प्रेत पाइ विमुह भरै, ओ इसराइ ताइ जो मुख उच्चरै ॥१५॥
महाईत उपद्रव मलवाई, कीधै जपनउ व्यापइ काई ।
धूप खेवि देवि त्यां ध्याइ, वल्ली ज्यां कुशल घरे वाई ॥१६॥
रिण रावल समर्यां सुरराणी, धायायां भय भाजइ धणीयाणी ।
आपै साथी तुरज आणी, सन्त सादे आवै सुरताणी ॥१७॥
भमता सुणि वीनती दिशि भाले, तुरका भय मोह दूरे टाले ।
प्रणपत्ति करे पूजूं प्रहकाले, रावली पाडीआ रखवाले ॥१८॥
वेरीदल आवंता वाडे परगट संत सादे पाधारै ।
आडी फिर पाछा ऊतारे, अपणा जन सरणइ औरै ॥१९॥
जढ नर जंगल देश जठै, पारै गढ़ झगपृहौ बहू कूड़ पठइ ।
कोई चिगड़ चगड़ सन्मुख कठरै, तूं राखइ माता शरम तठै ॥२०॥
जिण पोहरै चोर साह सम जाणि, साधां पिछाणं सइ न्य(न्या)णि ।
ऊपरि करी संतां आए साणी पोहरै इणि राखी अणी पाणी ॥२१॥
सुभ जन नाम लयां साजा, कोडि साढ़ा तीन जन सुखकाजा ।
तइं देश कोट गढ दे ताजा, रांकाथी तुरत किया राजा ॥२२॥
मन मान्या मही मेह वरसावै, नव-नव अन्न करसण नीपजावै ।
परजा राजा सही सुख पावइ, अई रजा तुझ सिर त्यां आवै ॥२३॥
त्यां आगली वाजै तुझ त्वरा, खल भाजै खोहिण दल पुरा ।
सवरीं गर जीपइ भडी शूरा, ते प्रगट प्रहार खत्री पूरा ॥२४॥
तूं बाली प्रौढ़ी नै तरुणी, गुण सुन्दरी हंसा गयगमणी ।
रूप अनोपम सुरराणी जय-जय जगदम्बा जगजननी ॥२५॥
गिरि शिखर विराजइ तू गाजइ, वडथानी थानी झल्लरी वाजइ ।
झतरालि नयर नयर झाजइ, रिधिमण्डे देवल तूं राजइ ॥२६॥
विचर विचर तूं ब्रह्माणी, समरी सिध साधक सुरराणी ।
अटवी उद्यान वन आयसाणी, जल थल महियल जंगल जाणी ॥२७॥
तूं नीर समीर नदी नालइ, वह ताजण राखइ वरसालइ ।
त्रिपुरा मत्थ गय भय टालइ, देवी सिंघण आणइ दे ठालइ ॥२८॥

अहि वींछी अंधारइ अजुआलइ, पासइ टालइ जिनप्रतिपालइ ।
आवे नहीं मींचि त्यां गणकालइ, साचल जांसू निजरसूं निहालइ ॥२९॥
देश-विदेश सीयइ दाहू, माता समर्‍यां न हूवइ माहू ।
कोई रोग सोग नावइ काहू, चावंड निज चाहो हिव चाहू ॥३०॥
गुणउज्जल निर्मल तुझ गाऊँ, धणियाणी एक मना ध्यायूँ ।
चरणाली अरज करण चाहूं, पहूरी परसिद्ध बहुरिद्ध पाऊँ ॥३१॥
सेवक जण दिन दिन सुखकरणं, हित सायर मन तन दुःख हरणं ।
तूं माय सहाय दूतर तरणं, सिचियाय नमो तो पाइ सरणं ॥३२॥
सतर चउसठइ जेठसइ गुरु आज्ञा श्री **देवगुप्त**गृही ।
मुनि **ओइसगच्छ जयरतन** मुही, कीर्ति श्रीसाचल मातकइ ॥३३॥

इति श्री सच्चायिका स्तुति

कठिन शब्दार्थ :

सुध	- शुद्धि
दिनचढ़ती	- प्रतिदिन
खेवी	- खेना
कंध	- स्कन्ध
व्रण	- वर्ण
सिचिचाय	- सच्चायिका
अठील	- यहाँ(?)
थिति	- स्थिति
अपनायत	- अपनाकर
नावइ	- नहीं आता है
इतरो	- इतना
मोपरी	- मेरे ऊपर
प्रभवइ	- प्रभावशील
दिलदा	- दिल से
इसवाइ	- ईश्वरी
महिर	- कृपा
अंगी	- अंगे
नवनेवज	- नवनैवेद्य
विशु	- विश्व
सांवल	- श्यामल
अवदाता	- प्रसिद्धि
उज्जड़	- उबड़-खाबड़
समि	- समय
अमि	- अमृत
तोटो	- कमी
जितरो	- जितना
जाद	- याद
दालिद	- दारिद्र
भौमपर	- भूमि पर
साचल	- सच्चायिका
विमुह	- विमुख
धणीयाणी	- स्वामिनी
करसण	- किसन
मींचि	- मृत्यु
दूतर	- दुस्तर
ध्यायी	- दौड़कर आती है
प्रणपत्ति	- नमस्कार
गसगमणी	- हाथी के समान चलने वाली
चावंड	- चामुंडा

श्री रत्नविजयजी रचित

दो स्तवन

इस लेख में श्री रत्नविजयजी रचित दो स्तवन दिए जा रहे हैं । प्रथम तो श्री कृष्णगढ़ स्थित श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ का है और दूसरा रतलाम मण्डन श्रीऋषभदेव स्वामी का है ।

श्री रत्नविजयजी किस गच्छ के थे ? और किसके शिष्य थे ? इस सम्बन्ध में मुनिराज श्री सुयशविजयजी और सुजसविजयजीने 'सचित्र विज्ञप्ति-पत्र' शीर्षक से जो लेख लिखा है उसके आधार पर श्री रत्नविजयजी की विजयशाखा को देखते हुए ये तपागच्छीय थे और उन्होंने अनुमान किया है कि श्री तपागच्छ श्रमण वंशवृक्ष पृष्ठ ७ अमीविजयगणि के शिष्य श्री रत्नविजयजी का नाम प्राप्त होता है । श्री रत्नविजयजी के दो शिष्य हुए, मोहनविजय और भावविजय । भावविजय के शिष्य आचार्य प्रवर श्री विजय नीतिसूरि हुए, अतः उन्होंने यह अनुमान किया है । श्री नानुलाल नाम के विद्वान् के द्वारा लिखित सचित्र विज्ञप्ति पत्र के कर्ता यही रत्नविजयजी हैं। किन्तु इन दोनों स्तवनों को देखते हुए श्री रत्नविजयजी तेजविजयजी के शिष्य श्री शान्तिविजयजी के शिष्य थे । और इनका समय भी समकालीन है अतः यही रत्नविजयजी प्रतीत होते हैं न कि आचार्य प्रवर श्री नीतिसूरिजी के पूर्वज ।

श्री रत्नविजयजी को लिखे गये संस्कृत विज्ञप्ति पत्र में भी उनके गुरु का नाम नहीं है । इसके अतिरिक्त मेरे संग्रह में जो इस सम्बन्ध में दो विज्ञप्ति पत्र और एक पत्र है उसमें प्रथम विज्ञप्ति पत्र संवत् १९१० का है जो ग्वालियर भेजा गया है, उसमें भी गुरु का नाम नहीं है । दूसरे विज्ञप्ति पत्र में जो किशनगढ़ से संवत् १९१४ में लिखा गया है, उसमें यह लिखा है कि- श्री किशनगढ़ में इनका चातुर्मास था । तीसरे पत्र में भी जो कि मकसूदाबाद से प्रतापसिंह लक्ष्मीपतसिंह दूगड़ की ओर से लिखा गया है उसमें भी गुरु का नाम नहीं है । अतः नामसाम्य से और समयकाल भी एक होता है, इस दृष्टि से यह कल्पना कर सकते हैं कि- रत्नविजयजी शान्तिविजयजी के शिष्य थे । ये अच्छे विद्वान् थे, क्रियापात्र थे, चारित्रनिष्ठ थे और

भगवतीसूत्र पर व्याख्यान भी देते थे ।

प्रथम पार्श्वनाथ स्तवन में किशनगढ़ विराजित श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर में संवत् १९०६ का उल्लेख किया गया है और चातुर्मास भी वहीं था। अतः उनके द्वारा विज्ञप्ति पत्र में उल्लेखित चातुर्मास यहाँ है, इसकी पुष्टि होती है । दूसरे ऋषभदेव स्तवन के अन्त में लिखा है कि- साधु श्री त्यागी महाराज, संवत् १९०२ लिखा है और विज्ञप्ति पत्र भी ग्वालियर भेजा गया है । अतः नामसाम्य से यह अनुमान है कि वही हो । दोनों स्तवन प्रस्तुत हैं—

१. कृष्णगढ़ मण्डन पार्श्वनाथ स्तवन

रे प्रभु तार चिन्तामणि पासजी भक्तनी वार भवांतर जाल रे ।
प्रभु दीनदयाल विशाल छो हिवे सेवक सन्मुख भाल रे ॥प्रभु तार. १॥
रे प्रभु दूर थकी हूं आवियो भरपूर मनोरथ मुज्झ रे ।
प्रभु सूर थका किम तम रहे त्रिहुँ लोक दिवाकर तुज्झ रे ॥प्रभु तार. २॥
रे प्रभु चिन्तामणि स्वामी सिरे **गढ़ कृष्ण** विराजे आपरे ।
प्रभु पाप सकल नाशे परा भवि तन मन से कर जाप रे ॥प्रभु तार. ३॥
रे प्रभु प्रभुदर्शन जाणूं नहीं, हूँ ताणू निसदिन रूढ़ रे ।
गूढ़ अति गुण ताहरा किम जाण सके जिके मूढ़ रे ॥प्रभु तार. ४॥
रे प्रभु हरखे हिवडो माहरो तारक तायरो मुख देख रे ।
प्रभु मोर सोर जिम मेघ से तिम पंख जरे विन पेख रे ॥प्रभु.तार. ५॥
रे प्रभु उगणिसे छः के समय वद माघ तीज शुभ वार रे ।
रे प्रभु भगवन्त भेट्या भावसूं हिये हुलसे हरख अपार रे ॥प्रभु तार. ६॥
रे प्रभु **तेजविजय** तपतेज में, पद **शान्तिविजय** महाराज रे ।
प्रभु **रत्नविजय** एम विनवे बडवेगो दीजो सिवराज रे ॥प्रभु तार. ७॥

२. रतलाम मण्डन ऋषभदेव स्तवन

ऋषभ जिनेन्द्र दयाल मया कर्मो(करजो) भ(घ)णी हो लाल,
मया कर्मो(करजो) भ(घ)णी ।
भ्यासम(?) छै सवि तुज्झ अरज सुण मुझ धणी हो लाल,
अरज सुण मुझ धणी ॥

त्रिभुवनतिलक समान मोहादिक मन्थना हो लाल, मोहादिक मन्थना ।
सकलसुरिन्द्रना नाथ साथ शिवपंथना हो लाल, साथ शिवपंथना ॥१॥

व्यक्ति शक्ति अनन्त आतम निज पेखता हो लाल, आतम निज पेखता ।
सत्ता धर्म आसक्त उपाधि उवेखता हो लाल, उपाधि उवेखता ।
चरण सेवना स्वाद सुरिन्द्रथी आगला हो लाल, सुरिन्द्रथी आगला ।
समता संजम छा(ठा?)ण विना झूठी कला हो लाल, विना झूठी कला ॥२॥

रत्नपुरीमा धाम चैत्यचूडामणि हो लाल, चैत्यचूड़ामणि ।
अद्‌भुत रूप अनुपम ठवणा तुम तणि हो लाल, ठवणा तुम तणि ।
दीठी मुद्रा देव चन्द्रोदय दोहलि हो लाल, चन्द्रोदय दोहलि ।
सुरतरु कुसुम सुगंध मिलै किम सोहली हो लाल, मिलै किम सोहली ॥३॥

हूं छूं कर्माधीन मोहास्त्रव ऊछले हो लाल, मोहास्त्रव ऊछले ।
अशुभ करुं अनुष्ठान आणामें नवी मिले हो लाल, आणामें नवी मिले ।
खण्डित पर्पट रीत धर्म समाचरु हो लाल, धर्म समाचरु ।
सिद्धसमाननिधान आतमगुण विसरु हो लाल, आतमगुण विसरु ॥४॥

दंभादिकना छंद तणी मुझ वासना हो लाल, तणी मुझ वासना ।
सहेज समाधि विधान करी न उपासना हो लाल, करी न उपासना ।
प्रभुपदपंकजध्यान भविक भवजल तिर्या हो लाल, भवजल तिर्या ।
मदनसुन्दरी भरतार सन्ताप संहर्या हो लाल, सन्ताप संहर्या ॥५॥

दुजो न जाचुं देव सेव तुम पद सदा हो लाल, सेव तुम पद सदा ।
शरण तुम्हारो नाथ न छांडुं हूं कदा हो लाल, न छांडुं हूं कदा ।
शान्ति परमसुखरूप जगतचिन्तामणि हो लाल, जगत चिन्तामणि हो लाल ।
रत्नविजय अरदास आसा पूरो मुझ तणि हो लाल, आसा पूरी मुझ तणि ॥६॥

इति रत्नपुरीनाथ ऋषभदेव स्तवन ।

साधुजी श्री त्यागी महाराज रत्नविजय कृत स्तुति
संवत् १९०२ आसोज सुदी ११

★★★

श्री धनेश्वरसूरिजी रचित
संवेगकुलकम्

आगम प्रभाकर मुनिराज श्री पुण्यविजयजी सम्पादित 'कैटलॉग ऑफ संस्कृत प्राकृत मेन्यूस्क्रिप्ट : जैसलमेर कलेक्शन' के पृष्ठ २८८ पर अंकित, क्रमांक १३२४ प्रति में ४२ नं. की कृति पत्र २७० से २७२ तक में दी गई है। संवत् १२४६ की लिखी हुई प्रति है। यह वस्तुतः सूक्ष्मार्थविचारसारप्रकरण से प्रारम्भ होती है और युगादिदेवस्तोत्र पर समाप्त होती है । वस्तुतः यह स्वाध्याय पुस्तिका दृष्टिगत होती है । इसमें खरतरगच्छ के आद्याचार्यों की अधिकांशतः कृतियाँ है ।

यह कृति धनेश्वरसूरि की है । धनेश्वर नाम के कई आचार्य हुए हैं जिनका विवरण 'जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास' से दिया गया है । उसके अनुसार श्री धनेश्वर श्री जिनेश्वरसूरि के शिष्य श्री अभयदेवसूरि के गुरुभ्राता थे । इनका समय ११वीं शताब्दी माना जाता है ।

इसी समय में चन्द्रगच्छीय चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरि हुए हैं। जिनका कोई भी साहित्य का उल्लेख प्राप्त नहीं है ।

नागेन्द्रगच्छ (पौ.) के रामचन्द्रसूरि की परम्परा में अभयदेवसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरि हुए हैं । इनकी भी कोई कृति प्राप्त नहीं होती है ।

१४वीं शताब्दी में नागेन्द्रगच्छीय धनेश्वरसूरि हुए हैं ।

विक्रम संवत् ५१० (?) में धनेश्वरसूरिजी नाम के आचार्य हुए हैं। इनके भी कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होते हैं ।

संवत् ११७१ में धनेश्वरसूरि हुए हैं । जिनकी की सूक्ष्मार्थविचार सारोद्धार टीका है ।

संवत् १२०१ में विमलवसही आबू के उद्धारक धनेश्वरसूरि हुए हैं। इसी समय में चन्द्रप्रभसूरि के शिष्य धनेश्वरसूरि हुए हैं ।

राजगच्छीय धनेश्वरसूरि हुए हैं जो कि कर्दम भूपति थे ।

इन सब धनेश्वरसूरि के समय को देखते हुए इस रचना के कर्त्ता

कौन हो सकते हैं ? यह विचारणीय है । किन्तु इस हस्तलिखित ग्रन्थ में खरतरगच्छीय आद्याचार्यों की प्रायः कृतियाँ लिखी गई हैं । अतः श्री धनेश्वरसूरि श्री जिनेश्वरसूरि के शिष्य होने चाहिए । श्री जिनेश्वरसूरि, श्री बुद्धिसागरसूरि की शिष्य-परम्परा भी विशाल थी । श्री धनेश्वरसूरिजी की कृति सुरसुंदरीचरियं भी प्राप्त होती है । अतः इसका कर्त्ता जिनेश्वरसूरि शिष्य धनेश्वरसूरिजी ही मानना अधिक संगत होगा ।

संवेग से ही निर्वेद पैदा होता है और वैराग्यपूर्ण श्रद्धाभावना पैदा होती है । इस संवेगकुलक में पूर्वार्जित कर्मोदय से इस जीव ने जो पीड़ा प्राप्त की है और विवेकरहित होकर विलाप किया है, उसका विवेचन है । रे जीव ! नरक और तिर्यंचगति की तीव्र वेदना और व्यथा का तुझे स्मरण नहीं है । स्थिरचित्त होकर पूर्व में बांधे हुए बन्ध, वध, मरणादि और प्राणों का नाश, उसका यह फल है । दीनों पर तुने कभी भी अनुकम्पा नहीं की है और मुनिजनों को भी औषधदान नहीं दिया है । यह अब अशुभ कर्म का उदय है । अनेक भवसंचित पापकर्मों का उदय है । तूं विवेकवान होकर इस वेदना को विवश होकर भोगने को अभिभूत हुआ है । गजसुकुमाल, सनत्कुमार आदि धीर पुरुषों के द्वारा वेदना को अनुभव करते हुए अपने जीव को स्थिर कर किया है और धन्नामहर्षि, स्कन्दकशिष्य, मेतार्य और चिलातीपुत्र आदि का स्मरण कर शुभध्यान में स्थिर हो जा । इन महापुरुषों ने भी कर्मोदय के उदय से तीव्र दुःख पाया है । इसलिए इस आर्त्त रौद्रध्यान को छोड़कर, धर्मध्यान में रक्त होकर सकल कर्मों का नाश कर मोक्षसुख को प्राप्त कर, ऐसी धनेश्वर की भावना है । इस कृति का आस्वादन करिए-

संवेग कुलकम्

गुरुवेयणविरहेण व जिणसासणभाविएण सत्तेण ।
सुहझाणसंधणत्थं सम्मं परिभावियव्वमिणं ॥१॥
पुव्वभवज्जियकम्मोदएण रे जीव, तुज्झ सइ पीडा ।
जाया देहे ता किं विलवेसि विवेयरहिय व्व ॥२॥
किं जीय ! नेय सुमरसि नारयतिरिएसु तिव्ववियणाओ ।
थोववियणा वि उदए संपइ जं विलवसे विरसं ॥३॥

विहिया जीवाण तए इण्हिं ता सहसु थिरचित्तो ॥४॥
नरवरकम्मनिउत्तेणं जीवा पुरा बंधवहणमरणाई ।
पाणासणाइछेओ जो विहिओ तव्विवागो य ॥५॥
दीणाणाहुद्धरणं ओसहअसणाइएहि मुणिदाणं ।
जइ हुज्ज पुरा विहियं ता तुह किं हुज्ज इय पीडा ॥६॥
रे जीव अन्नजम्मे समज्जियं जं तए असइकम्मं ।
तस्स विवागं सम्मं इण्हिं विसयेसु सुहभावो ॥७॥
सम्ममहियासणाए अणेगभवसंचियं पि जं कम्मं ।
नासिज्जइ सुहभावा पवणेणं पेहपडलं व ॥८॥
जइ सविवेओ ण सहसि अज्ज तुमं जीव ! वेयणं विवसो ।
ता दुस्सहो भविस्सइ भवंतरे कम्मपरिणामो ॥९॥
अइदारुणगुरुवेयणअभिभूएणावि उत्तमनरेण ।
अट्टज्झाणं मुत्तुं धीरत्तं होइ कायव्वं ॥१०॥
गयसुकुमाल-सुकोसल-सणंकुमाराइ-धीर-पुरिसेहिं ।
किं न सुया जह सोढा जीयंतकरीउ वियणाउ ॥११॥
धन्ना खंदगसीसा मेयज्ज-चिलाइपुत्तपभिईया ।
गुरुवेयणविहुरा किं हु जे सुद्धज्झाणमावन्ना ॥१२॥
जेणेव तिक्खदुक्खं संसारियसोगसंभूयं ।
तेणं चिय सप्पुरिसा पडिवन्ना परमपयमग्गं ॥१३॥
अहवा खित्तपयाणेण जणा सहाय मग्गंति सस्सलवणत्थं ।
तुज्झ महारोगाई जाओ कम्मक्खयसहाओ ॥१४॥
इय भावणाइ अट्टं वज्जिय तं होसु धम्मझाणरओ ।
जेण हयसयलकम्पो सिवसुक्ख**धणेसरो** होसि ॥१५॥

इति संवेगकुलकं समाप्तम् ।

C/o. प्राकृत भारती अकादमी
१३-A, मेन गुरु नानक पथ,
मलवीय नगर, जयपुर-१७